REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 10 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2021

संतोष कुमार तिवारी की कृति 'फिलहाल, सो रहा था ईश्वर' में काव्य–विवेक और कथ्य का अध्ययन

डॉ. विशाल श्रीवास्तव
असि. प्रो. : हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय, पचवस–बस्ती

शोध–सार :

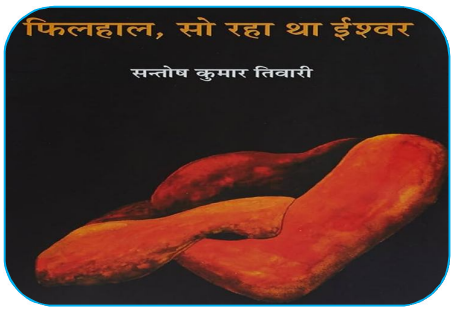

यह शोध–पत्र संतोष कुमार तिवारी की कृति 'फिलहाल, सो रहा था ईश्वर' में निहित काव्य–विवेक और कथ्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य समकालीन हिन्दी कविता के परिप्रेक्ष्य में कवि की वैचारिक चेतना, संवेदनात्मक दृष्टि और अभिव्यक्ति–शैली का मूल्यांकन करना है। काव्य–संग्रह में ईश्वर, आस्था, मनुष्य और समाज के संबंधों को नए ढंग से परिभाषित किया गया है, जहाँ कवि पारंपरिक धार्मिक धारणाओं से हटकर सामाजिक यथार्थ, मानवीय संकट और अस्तित्वगत प्रश्नों को केंद्र में रखता है। 'ईश्वर के सो जाने' का रूपक वर्तमान समय की विडंबनाओं, नैतिक शिथिलता और सामाजिक असंतुलन की ओर संकेत करता है। कविताओं में प्रयुक्त भाषा प्रतीकात्मक, व्यंग्यात्मक और विचारोत्तेजक है, जो पाठक को आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करने के लिए प्रेरित करती है। यह शोध निष्कर्षतः स्थापित करता है कि यह कृति समकालीन हिन्दी कविता में काव्य–विवेक की सशक्त उपस्थिति के साथ सामाजिक यथार्थ और वैचारिक प्रतिरोध को प्रभावी रूप में अभिव्यक्त करती है।

कुंजी शब्द : काव्य–विवेक, कथ्य, समकालीन हिन्दी कविता, ईश्वर–चेतना, सामाजिक यथार्थ, विडंबना, प्रतीकात्मकता, वैचारिक प्रतिरोध, मानवीय संकट, अस्तित्वबोध

सन्तोष कुमार तिवारी के पहले काव्य–संग्रह 'फिलहाल, सो रहा था ईश्वर' के शीर्षक से अनायास ही हिन्दी के एक चर्चित युवा कवि उमाशंकर चौधरी के संग्रह 'कहते हैं तब शहंशाह सो रहे थे' की याद आ जाती है। इन शीर्षकों की समानता महज एक संयोग ही हो सकती है, किन्तु अगर आज के जटिल समय के यथार्थ के बरअक्स इन शीर्षकों को समझने का थोड़ा प्रयास करें तो यह बात मन में कौंधती है कि क्या हमारा समय सचमुच कुछ निरर्थक और जड़ सत्ताकेन्द्रों का समय नहीं है। शहंशाह हो या ईश्वर (अगर सचमुच ऐसा कुछ होता है तो) दोनों ही आज केवल एक अनाम भय का कारण भर बनकर रह गये हैं, जिनकी कोई संवेदना संघर्षरत आदमी के साथ नहीं है। यह केवल व्यक्ति की भयग्रस्तता का समय मात्र हो, ऐसा भी नहीं है, अपितु डरावना सच यह है कि यह विचार की भयग्रस्तता का समय है। वे कलारूप और साहित्यिक माध्यम, कुछ दशक पहले जिनके अप्रगतिशील होने के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था, आज वे भयंकर रूप से पोंगापंथी का शिकार होते जा रहे हैं। यह सचमुच चिन्ता और विचार का विषय है।

कई बार एक ऐसे कवि की कविताओं पर लिखना, जिसके न केवल काव्यकर्म के शुरुआती दौर से आप वाकिफ रहे हों, बल्कि उसके जीवन संघर्ष को भी आपने बहुत नजदीक से देखा हो, बहुत चुनौती से भरा हो जाता है। संतोष कुमार तिवारी की बहुत–सी प्रारम्भिक कविताओं का मैं पाठक रहा हूँ और इतना ही नहीं, उनके कवि–जीवन को मैं बहुत नजदीक से जानता भी रहा हूँ, और कई बार आँखों के बेहद नजदीक रहने

वाली चीज़ें धुंधली नज़र आने लगती हैं। फिलहाल, वे जीविकोपार्जन हेतु मीलों दूर रहते हैं, और अब मैं उनके कवि व्यक्तित्व की परिपक्वता को उनके इस संग्रह में 'साफ–साफ' देख पा रहा हूँ।

न जाने क्यों मैं 'पीछे रहना' कविता से अपनी बात शुरू करना चाहता हूँ। बेहद सादा लहजे (जो संतोष कुमार तिवारी के कहन की खास शैली ही है) में वे बड़ी बात कहते हैं। जिस विमर्श को साधने में कितनी ही आत्मकथाएं और कहानियां कई बार असफल हो जाती हैं, उसे वे बेहद आसानी से इस कविता में कहते हैं –

तुम्हें लाकर दूंगा/सूरज की पहली किरन/मौसम का पहला गुलाब जूड़े में लगाउंगा/सितारों से टांकूंगा तुम्हारी मांग/तुम्हारी कोई मांग अधूरी न रखूंगा/तुम्हें चलना होगा बस/हमारे पीछे

प्रगतिशीलता के तमाम वायवीय दावों के बीच जहां अब तथाकथित प्रगतिशील दिखने वाले चेहरों के पीछे का सामंती सच भी गाहे बेगाहे उजागर होता है, वहां एक पुरुष की स्वीकारोक्ति की व्यंजक छवि से उपजा यह व्यंग्य बेधता ही नहीं है उस नकली कलई को खरोंचता भी है, जिसके पीछे हमारे समाज का असली भद्दापन छिपा है।

संतोष एक ईमानदार कवि हैं। यह मैं इसलिये कह रहा हूँ कि वे सिर्फ वही लिखते हैं जो उनका वास्तविक अनुभव है, उधार के आवेग, उधार की स्मृतियां और उनकी छायाएं उनकी कविता में नहीं हैं। इसका उदाहरण है उनकी प्रेम कविताएं ; जैसे 'पास' कविता में वे लिखते हैं – *इतनी पास तुम/जितना/शब्दों के पास ध्वनियां/देवालयों में नैवेद्य, गीतों में लय और/बस्ते में टिफिनबॉक्स।* इसी तरह, 'मैंने देखा' कविता में उनकी पंक्तियां– *मैंने आंखों से छुआ क्या उसे/मानो सागर की/मौन तहों में/करवट ली किसी मनचले तूफान ने* अत्यन्त आत्मीय अनुभव से उपजी दिखाई देती हैं।

वर्जना और तिरस्कार के मोड़ों से गुजरता हुआ कवि का आत्मसंघर्ष भी उनकी कविताओं में पूरी शिद्दत के साथ नुमायां होता है। शक्तिसम्पन्नता और वैभव किस तरह मनुष्य को अन्यायी और अनाचारी बना देता है यह आज जगह–जगह प्रदर्शित होता दिखता है। संतोष ने भी इसे अनुभव किया है, अपनी कविता 'मैंने कहा' में वे लिखते हैं– *मैंने कहा–पेड़/उन्होंने तोड़ ली पेड़ की पत्ती–पत्ती/मैंने पानी कहा/सुखा दिये जलस्रोत सारे/फिर हवा कहा/बन्द कर दी खिड़कियां–रोशनदान।* यहां जो अनकहा या कि कहें अनलिखा है, वह यह कि यह सब कुछ करना उस वर्गविशेष की जरूरत नहीं बल्कि शगल है, उनका सैडिस्टिक प्लेज़र है। वह नहीं चाहते कि दमित शोषित वर्ग को उसका हिस्सा भी मिल जाये। कवि उस मनःस्थिति विशेष को रेखांकित करने में पूर्णतया सफल रहा है।

पारिवारिक स्मृतियों पर लिखी गयी संतोष की कविताएं बेजोड़ हैं। हिन्दी कविता में मां और पिता पर लिखी गयी कविताओं की तो याद आती है, पर दादी पर लिखी गयी कुछ कम कविताएं ही हैं। 'दादी का फगुआ गान' एक बेहद संवेदनापूर्ण कविता है। आज के समय से काफी पहले जब सामंतवाद जकड़न और अधिक गहरी थी, एक स्त्री का फाग गाते हुए अचानक नाचने लगना बेहद रोमांचित करने वाला बिम्ब है। इसी तरह का एक अनूठा और त्रासद बिम्ब 'पिता घड़ी थे' कविता में देखने को मिलता है, जहां कवि लिखता है – *ओ पिता, तुम्हारे मृत्योपरान्त/मां ने काजल/आंख की बजाय मांग में भर लिया।* यह बिम्ब कहीं भीतर तक लगातार हॉण्ट करता हुआ बसा रह जाता है, और कविता एक दीर्घकालिक करुणा से जमी हुई उदासी की परत को हमारे भीतर आकार देती है। ठीक इसी तरह 'मां को याद करते हुए' कविता में आखिरी वक्त में मां के साथ न रह पाने, और इतना ही नहीं उसकी मृत्यु पर उसे कंधा भी न दे पाने का दुख अपने पूरेपन में उभरता है।

संतोष की कविताओं की एक अन्यतम विशेषता है उनकी स्थानिकता। अगर मैं कहूं कि पहाड़ पर रहते हुए भी वे अयोध्या के बाशिंदे हैं, तो शायद गलत नहीं होगा। अयोध्या की चर्चित और प्रचारित छवि पर हिन्दी में कई कविताएं लिखी गयी हैं पर उनमें अयोध्या नाम के शहर की आन्तरिक लय को समझने की कोशिश कम दिखती है। संतोष ने अयोध्या के उस नागरिक जीवन पर केन्द्रित कुछ बेहतरीन कविताएं लिखी हैं। 'खास चोले में अयोध्या' कविता में उनका लिखना कि *प्रभुराम तुम्हारे बैकुण्ठ पधारते/चोला बदल लिया अयोध्या ने/सिंहासन के सभी रास्ते/अब वाया अयोध्या होकर जाते हैं।* बेहद सहज शब्दों में गूढ़ राजनैतिक समझ की कविता है। 'राम–राम' कविता में एकान्तिक योगी के राम–राम की रट को 'विक्षिप्त अयोध्या की थाती' जैसा मुहावरा देना संतोष के कवि की सफलता है।

संतोष की 'ईश्वर' पर केन्द्रित कविताओं पर बात किये बिना इस संग्रह के बारे में सारा कहना–सुनना अधूरा ही रह जायेगा। उनकी कविताओं को पढ़ते हुए यह भी नहीं कहा जा सकता कि उन्हें ऐसी किसी सत्ता पर अविश्वास है तो उनके पुख्ता भरोसे की झलक भी वहां नहीं दिखती। अगर कुछ स्पष्ट रूप से दिखता है तो वह है उनकी प्रश्नाकुलता, वे लगातार सवाल पूछते हैं, एक कवि की यह सजग प्रश्नाकुलता समाज के लिए बेहद ज़रूरी है। 'ईश्वर की इच्छा : एक' में अगर उनका ईश्वर 'जंगल में भटकता दुखान्त नाटक का नायक' है तो 'फिलहाल, सो रहा था ईश्वर : एक' में पुजारी के हवाले से बयान है कि 'बेसुध सोता है रातभर ईश्वर'। इस मिजाज से थोड़ा अलग 'ईश्वर' शीर्षक कविता में ईश्वर को अपनी सांसो का पहरेदार तो मानते हैं, पर उसके लिए किसी मन्त्रोच्चार ा उपासना से परहेज करते दिखते हैं। कुल मिलाकर ईश्वर संतोष के लिए एक मिलीजुली संरचना है, अपने संस्कारों के कारण वे उसकी उपस्थिति का अस्वीकार तो नहीं कर पाते, पर उसके बेहद परम्परागत रूप से तालमेल भी नहीं बिठा पाते। ईश्वर का अस्तित्व उनके जीवन की एक फांस है, एक अनसुलझी प्रमेय, जिसे वे अपनी हर कविता में सिद्ध करते और खारिज करते दिखते हैं। यह सुखद है कि लिखने मिटाने के इस खेल का प्राप्य उनकी कविताओं में दिखता है। संतोष ने अपनी कविता को फॉर्म के किसी विशेष आग्रह से दूर रखते हुए सहज और सम्प्रेषणीय भाषा का प्रयोग किया है। इतना अवश्य है कि परिपक्वता की अपनी इस यात्रा के क्रम में संतोष से कुछ लम्बी कविताओं की उम्मीद है। कई बार बेहद छोटी कविताएं उनमें आने वाले बयानों की वजह से निष्फल हो जाती हैं, जिनकी भरपाई लम्बी कविताओं में सम्भव है।

कुल मिलाकर, संतोष कुमार तिवारी का देर से आया यह संग्रह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। अपनी निर्दोष सहजता के शिल्प में कही गयी बड़ी और मारक बातों के लिए निःसन्देह हिन्दी–समाज में इसका स्वागत होना चाहिए।

संदर्भ–ग्रंथ–सूची :

1. परमानन्द श्रीवास्तव. (**2000**). समकालीन हिन्दी आलोचना. वाणी प्रकाशन।
2. विश्वनाथ त्रिपाठी. (**2021**). हिन्दी आलोचना. राजकमल प्रकाशन।
3. विश्वनाथ त्रिपाठी. (**2007**). हिन्दी आलोचना (अद्यतन संस्करण). राजकमल प्रकाशन।
4. मलयज. (**1985**). आलोचना का संकट. राजकमल प्रकाशन।
5. मलयज. (**1983**). डायरी (मलयज की डायरी). राजकमल प्रकाशन।
6. नामवर सिंह. (**2002**). इतिहास और आलोचना. राजकमल प्रकाशन।
7. रामविलास शर्मा. (**1990**). भारतीय साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन।
8. मैनेजर पांडेय. (**2006**). साहित्य और इतिहास दृष्टि. वाणी प्रकाशन।
9. गजानन माधव मुक्तिबोध. (**1980**). नयी कविता का आत्मसंघर्ष. राजकमल प्रकाशन।
10. अशोक वाजपेयी. (**2014**). कला का जोखिम. राजकमल प्रकाशन।
11. पुरुषोत्तम अग्रवाल. (**2012**). अकथ कहानी प्रेम की. राजकमल प्रकाशन।
12. राजेश जोशी. (**2016**). कविता का लोकतंत्र. राजकमल प्रकाशन।
13. कुमार विमल. (**2015**). साहित्य और संस्कृति विमर्श. वाणी प्रकाशन।